महाभारतः एक अन्य पहलू

मदन गुप्त
डी-1/120, रविन्द्र नगर
नई दिल्ली-110003

इस महाकाव्य का एक अनोखा पहलू यह है कि दस्तावेज है शहरी बनाम ग्रामीण संस्कृतियों का। जो नहीं होना चाहिए वह सब हुआ कौरवों के राज्य में, क्योंकि वो एक शहरी संस्कृति के प्रतिपादक थे जहाँ किसी की कन्या का **"वरण"** नहीं **"हरण"** बड़प्पन, शौर्य, वीरता और चक्रवर्तित्व (सम्राट) होने की निशानी है । जिस संस्कृति में कन्या के **"वरण"** को अच्छा माना जाता है वह होती है ग्रामीण अंचल की सभ्यता। यह भेद आज भी यथावत व्यवहार में लाया जा रहा है ।

शहरी संस्कृति का दूसरा पहलू है कि यहां के नागरिक दूसरे की सम्पत्ति को हड़प लेने के अवसर की तलाश में हमेशा ही रहते हैं। कौरव तो पाण्डवों का राज्य ही हड़प गये । अंग्रेज भारतीय राजाओं-नवाबों के राज्य हड़प गये । दुनिया में युद्ध के जरिये एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को ही हड़प जाता है । आजकल शहरों में कोई पड़ोसी की जमीन हड़प रहा है तो किसी ने सरकारी जमीन हड़प ली तथा किसी और ने सड़क पर ही कब्जा जमा लिया । इसके विपरीत ग्रामवासी इस तरह के व्यवहार को शर्मनाक और दोषपूर्ण मानते हैं । शहरी अपने गलत काम को वकील की मदद और अदालत की महति कृपा से सही ठहराने की हर कोशिश वैसे ही करता है जैसे महाभारत में शहरी संस्कृति के नायक धृतराष्ट्र , दुर्योधन, कर्ण अथवा शकुनि करते हैं । यह शहरी संस्कृति अपनाने में विदुर असमर्थ ही था कि वह कभी भी इन पात्रों के विचार, कार्य-

अजनबी और परदेसी ही महसूस करता रहा । विदुर का सारा विवेचन, उसकी भाषा, उसके विचार, उसके मंतव्य और उसकी नीति ग्रामीण संस्कृति की स्थापना का प्रयास था । उसकी नीति असफल इसीलिए हुई कि वह अपनी नीति शहरी संस्कृति पर आरोपित करना चाहता था ।

शहरी संस्कृति (शहरीकरण या अरबनाईजेशन) जैसा भी हो इतना कमजोर कदापि नहीं होता कि उसे ग्रामीण संस्कृति उखाड़ फेंके । यह संस्कृति रत्ती भर भी समझौता या एडजस्टमेंट करने को तैयार नहीं होती है जबकि ग्रामीण संस्कृति ले-देकर या मिलजुलकर मामले को निपटाने में विश्वास करती है । शहरी संस्कृति कलह को बढ़ाती है, उसके साये में पलती है । ग्रामीण संस्कृति शांति में विश्वास रखती है भौर भाईचारे, सौहार्द और प्रेमपूर्ण व्यवहार की स्थापना करती है । दुनिया में आज तक ग्रामीण संस्कृति ने कोई युद्ध आरम्भ नहीं किया है । जितने भी युद्ध हुए हैं, सभी शहरी संस्कृति की दुःखद देन हैं । विदुर की नीति महाभारत घटित होने से नहीं रोक सकी । दुर्योधन पांडवों का राज्य उन्हें लौटाना नहीं चाहता था, जबकि पांडव सिर्फ पांच गाँव पाकर ही संतुष्ट हो जाते पर दुर्योधन तो पांच गाँव क्या सुई की नोक भर जमीन भी उन्हें देने को तैयार नहीं हुआ । यह होता है शहर का घमंड और वह होती है ग्रामीण विनय-विनीत-विनम्रता !

शहरी संस्कृति किसी असहाय स्त्री को निर्वस्त्र करके अपमानित करने की सोच भी सकती है । वह भी सरे आम, राजसभा में । इसकी दहशत इतनी होती है कि व्यक्तिशः (यानि बतौर एक इंडविजुअल) अपने आप को बड़ा दिग्गज साबित करने वाले भी अगलें-बगलें झांक कर अनसुनी या अनदेखी करने

की कोशिश करते है या इसे सही ठहराने का प्रयास करते है या फिर उसी में शरीक होकर अत्याचार करने वाले का साथ देते हुए अत्याचार के भागीदार हो जाते हैं । इसके विपरीत ग्रामीण संस्कृति दौड़कर ऐसी असहाय स्त्री की सहायता करती है और सबसे पहले उसका वस्त्राभरण करती है । यह सिलसिला बाकायदा जारी है । बल्कि आधुनिक युग में बढ़ते हुए शहरीकरण के चलते यह शहरी संस्कृति पल-बढ़ ही नहीं रही है , सशक्त भी होती जा रही है । जो कुछ अवांछनीय घटित हो रहा है वह केवल भारत ही नहीं दुनिया भर की शहरीकृत संस्कृतियों के समाज में हो रहा है ।

शहरी संस्कृति का दबाव ग्राम्य अंचल पर ही पड़ता है । वहां के प्राकृतिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, मानव संसाधनों का दोहन शहरी संस्कृति करती है। जल्द ही यह प्रक्रिया शोषण में बदल जाती है । जब शोषण असहाय होने लगता है तो फिर शुरू हो जाता है दमन का कुचक्र । एक लम्बे अर्से तक ग्रामीण समाज इस दमन को झेलता रहता है, पर जब सहन करना संभव न हो तो क्रांति फूट पड़ती है । दमन से पीड़ित और आक्रांत हर व्यक्ति होता है इसलिए, व्यक्ति का आक्रोश जल्दी ही पूरे समाज का आक्रोश बन जाता है । शहरी संस्कृति अपनी पिछली सफलताओं के कारण दमन का शिकंजा और ज्यादा बढ़ा देती है क्योंकि उसका घमंड उस हद तक बढ़ चुका होता है कि उसे ग्रामीण समाज के अस्तित्व का ही ध्यान नहीं रहता , उसकी शक्ति आभास भला क्या होगा । उसे गलतफहमी रहती है कि वह ग्रामीण समाज का अस्तित्व ही नष्ट कर सकता है । कंस ने बृजवासियों को ऐसा ही समझा । मथुरा नगर का निवासी राजा कंस नंदगांव जैसे बृज के पिछड़े गांव को कुछ नहीं समझता था । मगर मार खा गया इन्हीं ग्रामवासियों के हाथ । समूल नष्ट करने चला था , हो गया खुद ही नष्ट । उधर दुर्योधन ने भी न जाने कितनी बार श्रीकृष्ण

को "ग्वाला" कहकर संबोधित किया था । उसका यही शहरी गरूर मौत का कारण बन गया । अगर दुर्योधन विनम्र होता , जैसा उसका भाई युधिष्ठिर था, तो क्या उसका यह हश्र होता? किन्तु शहरी संस्कृति की यह उपज उस सत्य को पहचानने से ही इन्कार करती है कि कभी-कभी ग्रामीण संस्कृति की उपज उससे अधिक शक्तिशाली हो सकती है ।

शहर सम्पन्न है इसलिए ग्राम जिन्दा है । ग्रामीण उत्पादन कर रहे हैं ज्यादा खपत करते हैं कम । इनके सरप्लस उत्पादन को कई गुणा मुनाफे में बेचकर मालामाल हो रहे हैं शहरवासी । उसी को अपनी सेवाओं और उत्पादों को बेचकर मुनाफा कमा रहे हैं । चाहे शिक्षा हो, स्वास्थ्य सेवायें हों या अन्य राजकीय सेवायें । यह दोहरा शोषण ज्यादा दिन नहीं चलेगा । यह तभी तक चलेगा जब तक शहरी संस्कृति की इस मुनाफाखोरी को कोई सफलतापूर्वक ललकारते हुए धूल न चटा दे। बेहतर होगा कि शहरी संस्कृति को विदुर की ग्रामीण नीति से संचालित करके न्यायपूर्ण व्यवस्था की स्थापना हो । ऐसा नहीं हुआ तो न तो शहरों के महलों में सुख होगा न गांवों की झोपड़ों में। होगा तो एक ऐसा समाज जो न शहर होगा न गांव बल्कि झोपड़पट्टी या घेट्टो (Ghettos) कहलायेगा।